वर्ष 8, अंक 1

ISSN 2456-3838

पिक्चर प्लस

ज़िन्दगी का बायस्कोप

अगस्त 2024 ₹ 70

सिनेमा आज़ाद है

ISSN : 2456-3838
Licence No. F2 (P19) PRESS 2016

पिक्चर प्लस
वर्ष 8 अंक 1; अगस्त, 2024
(मासिक/द्विभाषिक हिंदी-अंग्रेजी)

संपादक
संजीव श्रीवास्तव

संपादन सहयोग
कल्पना कुमारी

कवर डिजाइन
ज़ाहिद मोहम्मद खान

लेआउट डिजाइन : शाश्वती

पंजीकृत पता
37/ए, गली नंबर 2,
प्रताप नगर, मयूर विहार, फेज-1
दिल्ली-110091

मूल्य- 70 रुपये (एक प्रति)
वार्षिक - 1,000 रुपये (व्यक्तिगत)
5,000 रुपये (संस्थागत)

आप डिजिटल संस्करण को नॉटनल (www.notnul.com) से ख़रीद सकते हैं।

संपर्क : 9313677771
ईमेल : pictureplus2016@gmail.com

नोट : सभी रचनाओं में व्यक्त विचारों से पत्रिका की संपादकीय नीति तथा लेखक-प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं। पत्रिका के किसी भी पक्ष से संबंधित कानूनी निपटारे का न्यायिक क्षेत्र दिल्ली होगा।

(सभी चित्र इंटरनेट से साभार)
सभी पद अवैतनिक

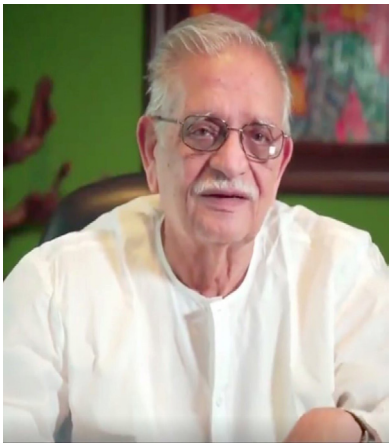

अनुक्रम

04 संपादकीय : चलती का नाम गाड़ी : सिनेमा की आज़ादी और विकसित भारत!
06 अरविन्द कुमार : प्रिया राजवंश हत्या की हक़ीक़त!

कवर स्टोरी: सिनेमा की आज़ादी

09 जवरीमल्ल पारख: क्रिएटिविटी के ख़तरे उठाने होंगे!
14 चरण सिंह अमी :रचनात्मक आज़ादी और साहित्य का सिनेमा
20 मुजफ्फर अली : फिल्ममेकर की आजादी खत्म!
21 यशपाल शर्मा : राइटर-डायरेक्टर को फ्रीडम जरूरी
22 गोविन्द नामदेव : हालात पहले से बेहतर
23 राजेन्द्र गुप्ता : पूंजीपतियों की शादी में नाचने वाले क्या फिल्म बनाएंगे?
24 बृजेन्द्र काला : आजादी ही आजादी है
25 दीपक डोबरियाल :डायरेक्टर प्रोड्यूसर का लाडला हो गया
26 जय श्री टी: थोड़ी-थोड़ी आजादी सबकी छिन गई
27 जय प्रकाश कर्नाटकी : अब तो सब चलती का नाम गाड़ी है
30 गौतम सिद्धार्थ: अगर ऐसा ना होता तो...
31 रविराज पटेल: रचनात्मक आज़ादी पर अंकुश
32 अडूर गोपालकृष्णन: "मैं फिल्म बनाने में समझौता नहीं करता"
34 डॉ. मनीष जैसल: "आपातकाल में आंधी बन सकती है तो आज क्यों नहीं...?"
39 माधव चन्द्र : गुलज़ार ज़िन्दगी को इंद्रधनुषी बनाने वाला गीतकार
पुस्तक प्लस: यतीन्द्र मिश्र की नई किताब
44 डॉ. इंद्रजीत सिंह : गुलज़ार सा'ब हज़ार राहें मुड़ के देखीं
48 ख़्वाजा अहमद अब्बास : एक मीना कुमारी के अंदर थीं कई मीनाकुमारियां
52 जयनारायण प्रसाद: रेखा विश्वास एक संवेदनशील अभिनेत्री
54 जयनारायण प्रसाद : मानिक बाबूर मेघ उम्मीद जगाती फिल्म
56 **Global Screen :** Hollywood Labor Backs AI Transparency Bill That Could Offer Fir**epower** power to Creators.
58 **शुभ समाचार** : 'विनोद नागर की फिल्म समीक्षा की पुस्तकों का विमोचन

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक संजीव श्रीवास्तव द्वारा 37-ए, गली नं. 2, प्रताप नगर मयूर विहार, फेज-1, दिल्ली–110091 से प्रकाशित। संपादक-संजीव श्रीवास्तव। चंद्रशेखर प्रिंटर्स, WZ/439/ नारायणा विलेज, नई दिल्ली-110026 से मुद्रित।

सिनेमा की आज़ादी और विकसित भारत!

आज़ादी एक तमन्ना है। आज़ादी एक आदर्श स्थिति है। आज़ादी एक सिद्धांत है। आज़ादी स्वप्न है, आज़ादी यथार्थ है। और आज़ादी राष्ट्रीय पर्व भी है। इस तरह हम सभी आज़ादी पर एक अच्छा-खासा निबंध लिख सकते हैं। पुरस्कार पा सकते हैं। व्याख्यान दे सकते हैं। तालियां बटोर सकते हैं लेकिन क्या हम इसी के बरअक्स आज़ादी को जी पाते हैं या किसी को जीने देते हैं? ज़रा सोचिए कि हम किसी कविता में कल्पना करने में, कहानी में एक किरदार गढ़ने में जो आज़ादी का बिजूका तैयार करते हैं, वह अगर सशरीर हमारे ही सामने उपस्थित हो जाएं तो? प्रेमचंद की 'कफन' के 'घीसू' और 'माधव' अगर किताब के पन्ने से निकलकर हमसे बतियाने लगे और सवाल करने लगे तो? हालांकि प्रेमचंद ने घीसू और माधव की कल्पना नहीं की बल्कि अपने आस-पास की दुनिया से उठाये थे। वास्तविक आज़ादी की यही विडंबना है। लेकिन फिर भी हम आज़ाद हैं। और इसी विडंबना पर साहिर ने कटाक्ष किया था- जिन्हें नाज है हिंद पर वो कहां हैं? इस लिहाज से देश की आत्मा आज भी 'प्यासा' है।

आज के ज्यादातर सिनेमा की स्थिति इससे भिन्न नहीं है। दिमाग में किसी फिल्म के आकार लेने से लेकर पर्दे पर उतरने और दर्शकों के बीच जाने तक की इसकी एक लंबी प्रक्रिया होती है। इस दौरान आज़ादी न जाने कितनी बार चीख़ उठती है, कितनी बार दम तोड़ती है, इसका कोई हिसाब नहीं। वन लाइनर के स्क्रीन प्ले बनने तक आज़ादी को कितनी बार जंग लड़ना पड़ता है, कहां-कहां समझौतों से गुजरना होता है, इसे कोई फिल्ममेकर से अच्छा भला कौन बयां कर सकता है! इसीलिए इस अंक में अनेक फिल्ममेकर्स और कलाकारों की राय शामिल की गई है। उन्होंने जो विचार व्यक्त किये हैं, और जो उदाहरण दिये हैं, वे चौंकाने वाले हैं। ऐतिहासिक और प्रामाणिक हैं। सिनेमा कैसे बनता है, कितनी आज़ादी और दबाव से सिनेमा हॉल तक पहुंचता है, इसे अगर व्यावहारिक तौर पर समझना हो तो इन टिप्पणियों की बारीकियों से होकर गुजरा जा सकता है। वरिष्ठ फिल्म पत्रकार और हमारे अग्रज दीप भट्ट जी ने बहुत मेहनत से इन कलाकारों से बातचीत करके इसे तैयार किया है। उनका आभार। वहीं जवरीमल्ल पारख और चरण सिंह अमी जी के लेख इसकी बिसात व्याख्यायित करते हैं।

आज देश भर में एक शब्द बड़े जोर शोर से सुनाई देता है, वह है- विकसित भारत। यकीनन विकसित अमेरिका, विकसित ब्रिटेन, विकसित चीन से भी आगे विकसित भारत हमारा ध्येय होना चाहिए। यह उपलब्धि हमारे गौरवशाली अतीत को साकार करने वाली कही जाएगी। लेकिन कभी-कभी सोचता हूं कि क्या यह उपलब्धि हम बगैर विकसित कला, विकसित समाज और विकसित सोच के हासिल कर सकते हैं? फ्रांस, इटली, जापान, ब्रिटेन जैसे मुल्क का सपना क्या बिना शिक्षित भारत के पूरा हो सकता है? काश, हमने पहले शिक्षित भारत का नारा दिया होता! बिना पूर्ण शिक्षित हुए हमने विकसित भारत और आत्मनिर्भर भारत की कल्पना कैसे कर ली! आज भारत में साक्षरता दर 74 फीसदी के आस-पास है जबकि वैश्विक साक्षरता दर 86 फीसदी के करीब। यानी वैश्विक स्तर पर हमारी साक्षरता दर करीब 8 फीसदी कम है। देश आज़ाद होने के समय सन् 1947 में साक्षरता दर 18 फीसदी थी। मतलब कि पिछले 77 साल में हमारे देश में करीब 60 फीसदी साक्षरता दर की उछाल देखने को मिली है। ये रफ्तार कितनी संतोषजनक कही जाएगी, किसी भी राष्ट्र को विकसित

बनाने के लिए- सोचा जा सकता है। हमारे महापुरुषों ने नारा दिया है- शिक्षा वह मशाल है, जो हर अंधेरे में रोशनी प्रदान करती है। शिक्षा वह आधार है जो आत्मनिर्भर बनाती है, अंधविश्वास और रूढ़ियों से आज़ादी दिलाती है। सिनेमा भी शिक्षा का माध्यम है। हैरत है आज कई फर्जी बाबाओं के जेल जाने के बाद भी भारी संख्या में लोग ढोंगी बाबाओं के सम्मोहन में फंसते हैं और भगदड़ में जान गंवाते हैं? तो क्या ऐसे हादसे हमें विकसित भारत बनाने देंगे? हमें साठ, सत्तर या अस्सी के दशक की कई ऐसी फिल्में देखने को मिलती हैं, कई ऐसे गाने सुनने को मिलते हैं- जो क्रिएटिविटी की अन्यतम मिसाल हैं। लेकिन हमले और विवादों के चलते वह क्रिएटिविटि दिखाने की इच्छा फिल्ममेकर्स में खत्म हो रही है। सवाल है बिना विकसित सोच के हम कैसे विकसित भारत में पहुंच सकते हैं? और यह विकसित सोच बिना शिक्षित भारत के कैसे पैदा हो सकती है? अगर 'अमर अकबर एन्थॉनी' जैसी फिल्म आज दोबारा नहीं बन सकती है तो समझा जा सकता है हमें पहले अपनी सोच को विकसित करने की कितनी जरूरत है!

मित्रो, पिक्चर प्लस में हमने लेखकों से लेकर पाठकों तक आज़ादी की भावना बनाए रखने का पूरा प्रयास किया है। यह फिल्म कलाकारों की कम, लेखकों की पत्रिका ज्यादा है। क्योंकि लेखक-समीक्षक फिल्ममेकर्स को राह दिखाते हैं। पत्रिका में हर लेखक अपने तार्किक विचार-विश्लेषण प्रस्तुत कर सकते हैं। यह आज़ादी ही इस पत्रिका की सबसे बड़ी पूंजी है।

मित्रो, इस अंक के साथ ही हम आठवें वर्ष में प्रवेश कर गए हैं और पुनर्प्रकाशन के तीसरे साल में। शरद दत्त फिर याद आते हैं! पिछले तीन साल बेहद महत्वपूर्ण थे। निजी प्रयासों से निकलने वाली फिल्म पत्रिका पिक्चर प्लस को देश भर के सिनेमा प्रेमियों ने भावनात्मक प्यार दिया है। लेखकों, समीक्षकों और पत्रकारों ने पिक्चर प्लस में एक नॉस्टेल्जिया का भाव महसूस किया। नॉस्टेल्जिया एक ऐसी चीज़ होती है जो लोगों में प्रेम भरी पीड़ा जगाती है। हम उन सभी सिने रसिकों के आभारी हैं जिनकी फिल्मी प्यास और तड़प को पिक्चर प्लस ने पूरित करने का प्रयास किया। आप सबसे आग्रह है, अपना स्नेह और मार्गदर्शन प्रदान करते रहें। आप कुछ भी कहने के लिए आज़ाद हैं। यह अंक आप सबको कैसा लगा-हमें जरूर लिखिएगा। सोशल मीडिया पर टिप्पणी शेयर करें। अब हम जुटते हैं, अगले अंक की तैयारी में। सादर।

आपका संपादक

संजीव श्रीवास्तव